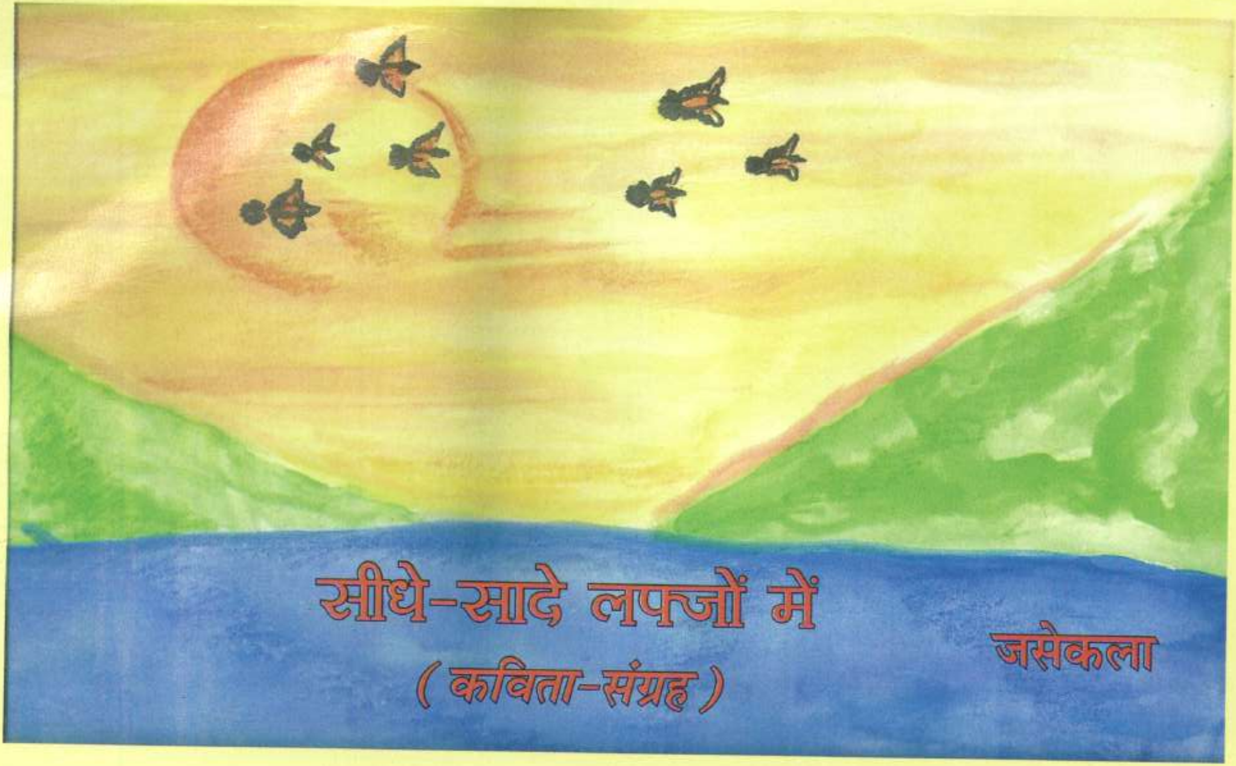

सीधे-सादे लफ्ज़ों में

(कविता-संग्रह)

जसेकला

सीधे-सादे लफ्जों में

(कविता-संग्रह)

जसेकला

लेखक : *जसेकला*

संपर्क : e-mail: jasekla@gmail.com

कॉपीराइट मुक्त किताब

प्रथम संस्करण : मार्च 2011

सहयोग राशि : पच्चीस रुपये

टाइपिंग : लिटिल ग्राफिक्स, कोट किशन चंद, जालन्धर

शब्द-संयोजन : आचार्य देवराज शास्त्री

प्रूफ रीडिंग : देव नारायण मौर्य

आवरण : निधि

प्रकाशक : लोक सेवक संस्थान,
बरवाला, मुजफ्फरनगर-251001 (उ.प्र.)
फोन : 09868173393

वितरक : रोशनाई प्रकाशन
212/CL/A, अशोक मित्रा रोड
कांचरापाड़ा, नार्थ 24 परगना-743145 (प० बंगाल)
फोन : 033-25850249, 09330887131

मुद्रक : भारती प्रिंटर्स, रुड़की रोड, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

क्रमिका

क्र.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	योग	7
2.	जिन्दगी का मकसद	8
3.	अंकुर	10
4.	कलम की किलकारी	11
5.	हकीकत	13
6.	नजरों के पार	14
7.	संसार का नाटक	15
8.	कैसी आजादी	16
9.	हिन्दी की हालत	18
10.	हम भी हैं	21
11.	ठप्पों की थोप महिला पर	23
12.	रौशनी के खंभे	24
13.	अपने ही दुश्मन	26
14.	कोल्हू के बैल और बछड़े	27
15.	नेचर-वॉच	28
16.	पंचवर्णीय बसंत	30
17.	मौसम	33
18.	आस्था का विज्ञापन	34
19.	गुरु-सिख	36
20.	भयंकर भगवान	37
21.	मिशन का शमशान	38
22.	इंसटेंट मैसेजिंग	40
23.	संदेशे बटन पर	41
24.	क्लाइमेंट-चेंज	42
25.	मेधा बनाम मैगा	43
26.	जाके पैर न फटे बिवाई	44
27.	सीधे-सादे लफ्जों में	45
28.	देख तमाशा इंडिया का	47
29.	बिक्री-घर	48
30.	पेयर	49

क्र.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
31.	बराबरी का रिश्ता	51
32.	प्यार का बाजार	52
33.	कुछ तो लोग कहेंगे	54
34.	अति का भला न बोलना	55
35.	मास्टर गोकुलचन्द के नाम	56
36.	तरक्की का सफर	58
37.	स्वार्थ के खिलाफ	60
38.	आउटसोर्सिंग	61
39.	नफरत का बार्डर	62
40.	अमी गांधी बोल्छे	64
41.	छब्बीस जनवरी	68
42.	ड्रेस-चेंज	70
43.	इवेन्ट-मैनेजमेंट	71
44.	घबराहट	74
45.	चौंसठ का खेल	75
46.	एकला	76
47.	रिक्शे का सफर	78
48.	कुली	81
49.	राइट टू वर्क	82
50.	यूनिफार्म	83
51.	अंधा कानून	84
52.	बगावत	85
53.	रक्त-पिपासा	86
54.	नया साल	88
55.	इलाज	90
56.	5 कविताएं बच्चों की	91
57.	पुरानी दिल्ली स्टेशन के सामने	94
58.	मास्टर ऑफ आर्ट	95
59.	मैं युधिष्ठिर नहीं हूँ	97
60.	वक्त गुजरने के साथ	98
61.	विन-विन	99
62.	नया-पुराना	100

क्यूँ लिखा ?

उथल-पुथल मची रहती है
मन के अंदर :
असंतोष
बेचैनी
गुस्सा
खीझ
सवाल.....
ऐसी ही भावनाओं को
ठोस और वैचारिक रूप
देने की
कोशिश करते हुए
प्रस्तुत है यह संकलन :
सीधे-सादे लफ्जों में
समझ, संवेदना और सहयोग के
आधार पर
समाज से संवाद
बनाने के लिए!

-जसेकला

व्यवस्था - परिवर्तन की उम्मीद में
संघर्षरत
साथियों
को
समर्पित

योग

1 + 1 = 2 (गणित)
1 + 1 = 3 (व्यापार)
1 + 1 = 1 (अध्यात्म)
1 + 1 = 11 (कला)
और कविता भी इक कला है
समीकरणों से परे।

जिन्दगी का मकसद

मुझे जीना है
हाशिए के लोगों के लिए
गूंगों की आवाज बनकर
लंगड़ों के पैर बनकर
अंधे की लाठी बनकर
बीमारों को हौंसला देना है।

शामिल होना है
गरीब की खुशियों में
अछूत को अपनाना है
लिखनी है उनकी गाथा
जो जीवन के संघर्ष में
इतना उलझे रहे कि
पढ़ना लिखना उनके लिए
लक्जरी हो गया।

औरत को आदमी
तो नहीं बनाना मुझे
पर उसमें औरत होने का
स्वाभिमान पैदा करना है
और आदमियत के अहम से
उसे उबारना है।

मैंने ईश्वर को देखा नहीं
सरकार पर यकीन नहीं
अमीर की लूट रोकने का
मैं खुद ही होना चाहता हूँ
गरीबनवाज और दीनबंधु
लड़ते हुए जुल्म के खिलाफ।

हाशिए के लोगों के लिए ही
मुझे मरना है।

अंकुर

आज अचानक
मैंने गौर से देखा.
खिले हुए पुष्प को
और सोच इसके
अतीत के अंकुर के बारे में
मन ही मन मुस्कराया।
हां,
कहीं-न-कहीं
कभी-न-कभी
आरम्भ होता है जीवन
इसी अंकुर से।
न स्वयं पता है इसको
न प्रकृति को-
भविष्य
जो है
अनिश्चित और अत्यंत रहस्यपूर्ण
पर फिर भी आशा का
आधार है यह अंकुर।

कलम की किलकारी

सड़क पर पैदल चलते हुए
किसी किताब को पढ़ते हुए
कोई गीत सुनते हुए
नींद में सपना देखते हुए या
फिर यूँ ही उदास बैठे हुए
कोई बीज पड़ जाता है
अवचेतन मन में
और गर्भ ठहर जाता है।
न जाने कितना वक्त लगे
उसे पकने में
किंतु प्रसव पीड़ा गहरी हो जाए
तभी डिलीवरी होगी
और अपनी नवजात गुड़िया को
गोद में पाकर ही
मुझे तृप्ति मिलेगी।

मेरी रचना चाहे
तुम्हें कविता न लगे
पर वो बहुत सुंदर है
और समझभरी भी,
क्योंकि उसे मैंने जन्मा है
अपनी कोख की कलम से
और महसूस किया है

उसका कोमल स्पर्श
रोम-रोम की गहराइयों तक
मैंने अपने भीतर।
वो मेरा अहसास है
वो मेरा जज्बात है
वो मेरा हिस्सा है
वो मेरा किस्सा है।

हकीकत

सच क्या है?
वो जो हम देखते हैं
वो जो हम सुनते हैं
वो जो हम महसूस करते हैं
शायद सब कुछ
शायद कुछ भी नहीं
क्योंकि कुछ और भी
देख रही होती है आंखें
सुन रहे होते हैं कान,
धुंधला होता है
मन का अक्स
अतीत की परत से,
निरपेक्ष होना वाकई
बहुत मुश्किल होता है।

सच मीठा नहीं भी हो सकता
सच को बयान करने के लिए
रिहर्सल नहीं करनी पड़ती
सच सच ही होता है
नंगा, साफ और पारदर्शी
वो जो होता है - सो होता है।

नजरों के पार

सब चश्मा तो नहीं लगाते
न ही सभी चश्मा न लगाने वालों की
नजर दुरस्त होती है,
तीन चौथाई भरे हुए गिलास को
एक चौथाई खाली कहता है कोई
अपना–अपना नजरिया है।
नजर आता है
किसी को गरीब में अमीर
किसी को अमीर में फकीर,
गूंगे की मजबूरी
मौनी की मजबूती है।
अपनी आंखें खुद चैक करो
सही नम्बर का चश्मा पहनो
तभी देख पाओगे साफ
नजारा कुदरत का
पूर्वाग्रह के रंगों से मुक्त।

इनसाइट का सपना
आईसाइट को हकीकत नजर आता है।

संसार का नाटक

सब एक दूसरे पर हँसते हैं–
दाढ़ी वाला सरदार – चुटैया वाले पंडित पर
चोंगे वाला पादरी – झोले वाले समाजसेवी पर
टोपीवाला हाजी – तिलकधारी पुजारी पर
दिगम्बर साधक – सरमुंडे जोगी पर।
सफेद साड़ी – रंगीन साड़ी पर
गजरे वाली – बुरके वाली पर
काला गोरे पर, भूरा काले पर
टाई – पाजामे पर, जूता – चप्पल पर
जींस – लुंगी पर, भगवा – हरे पर
बूढ़ा – बच्चे पर, आदमी – औरत पर।
सभी नमूने हैं अजीब
करते नौटंकी इस दुनिया में
अपनी–अपनी।

कैसी आजादी

है-भाषा की गुलामी
साहब की गुलामी
जोरू की गुलामी
मन की गुलामी
कहां है गुलामी?
है-किसी को भी गाली बकने की आजादी
सड़क पर खड़े होकर मूतने की आजादी
आवारा बेकार घूमने की आजादी
दंगों में घर जलाने की आजादी
कैसी आजादी?
है-हर जगह क्यूं की गुलामी
बाजार में महंगाई की गुलामी
कोर्ट के चक्करों की गुलामी
थाने की दहशत की गुलामी
कहां है गुलामी?
है- कार और मोबाइल चुनने की आजादी
खुलेआम रिश्वत लेने की आजादी
मैच में सट्टा लगाने की आजादी
कैसी आजादी?
है-सरकारी बाबुओं की फाइलों की गुलामी
आश्रम में गुरुओं की गुलामी
भीड़रैली में नेताओं की गुलामी
डाक्टर की फीस की गुलामी

कहाँ है गुलामी?
है–बोतल का पानी पीने की आजादी
पिज्जा खाने की आजादी
सरकारी दुकान की दारू पीने की आजादी
वैधानिक चेतावनी के बावजूद :
गुटका खाने और सिगरेट का धुआं उड़ाने की आजादी
संत का चोंगा पहनकर प्रवचन देने की आजादी
डोनेशन देकर मैनेजमेंट–कोटा से सीट पाने की आजादी
बेहिसाब मुनाफा कमाने की आजादी
अखबार में नंगी तस्वीरें छापने की आजादी
बच्चे पैदा करने की आजादी
कैसी आजादी?
है–
सोच की गुलामी
विचार की गुलामी
दिमाग की गुलामी
बाजार की गुलामी।

हिन्दी की हालत

हम सोचते हैं हिन्दी में
उल्टा-पुल्टा अनुवाद करते मन के अंदर
अंग्रेजी में बोलते हैं टूटा-फूटा डिक्टेशन
टाइप किए हुए को
कागज पर और कम्प्यूटर पर
कांटते-छांटते, ग्रामर को सँवारते
वाक्यों को इधर-उधर उठाते-बैठाते
सही शब्दों के सही अर्थ
डिक्शनरी में तलाशते
साइन करने के बाद भी लगता
कुछ छूटा तो नहीं
व्याकरण सही थी क्या
फिर भेज देते खत उसको
जो पढ़ने के बाद
मतलब समझने के लिए
फिर डिक्शनरी खंगालता है
और अनुवाद करते हुए
मन में मजमून बैठाता है।
हिन्दी बोलने में हया
अंग्रेजी बोलने में अकड़ महसूस होती है
शिष्टता जताने में : थैंक्यू और सॉरी
किन्तु गुस्सा जताने में गाली हिन्दी में ही देते हैं
ताकि दूसरा समझ भी तो सके।

लेक्चर देना हो मैनेजमेंट पर तो अंग्रेजी में
किन्तु गप्प लड़ानी हो तो हिन्दी ही भाती है।
जिस भाषा में
मां को मॉम, बाप को पॉप या डैडी
कहना पड़े
अंकल से रिश्ते का पता न लगे
इन-लॉ से ससुराल को समझना पड़े
उस भाषा में कल (था और होगा) के लिए
चाहे अलग-अलग शब्द हों
तो भी....
दर्द के लिए, प्रेम के लिए
गीत के लिए, हंसी के लिए
भाषा तो अपनी ही काम आती है।
कितने भी बड़े साहब हों
अफसर या मैनेजिंग डायरेक्टर
रिक्शा स्टैंड पर, किराया तय करते
प्लेटफार्म पर कुली से बहस करते
सब्जी खरीदते वक्त मोल-भाव करने के लिए
सभी को वंचितों की दरिद्र भाषा में उतरना पड़ता है
वो अलग बात है कि हम वंचित होना नहीं चाहते।
कैरियर के लिए
पब्लिक स्कूल में
बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाना है
उन्हें जानवरों और सब्जियों के नाम
अपनी भाषा में नहीं

परन्तु अंग्रेजी में जरूर मालूम हों,
नजाकत के लिए तो
अब हिंगलिश भी आ गई है
कंधे उचकाकर
मुंह बिचकाकर बोलने के लिए।
हम सचमुच मॉडर्न हो गए हैं
और भारत इंडिया बन गया है
अब इसे अमरीका बनाने की तैयारी है।
बस इतना ही कहना है तुमसे
कुछ भी पढ़ो, लिखो, बोलो
पर सोचो जरूर हिन्दी में
और कभी-कभार गप्पें लड़ाया करो
गालियां भी दिया करो
अपनी भाषा में।
जिम्मेदारी हमारी भी है कि हम हिन्दी लिखें
जिम्मेदारी तुम्हारी भी है कि तुम हिन्दी पढ़ो
जिम्मेदारी हम सभी की है :
मातृभाषा हिन्दी को मां समझें।

हम भी हैं

लोग मेरा सरनेम पूछते हैं या
फिर टटोलकर बायोडाटा
मेरी कैटेगरी जानना चाहते हैं
मुझे असुरक्षित महसूस कराने के लिए,
आरक्षित होने के कारण
उनकी नजरों में खटकता हूँ
जैसे कोई अपराधी हूँ मैं
उनकी जन्म-सिद्ध अधिकार की
रोटी का हिस्सा छीनता
अपने विशेषाधिकार से।
क्या सर जमीन पर रगड़ने से
तुम चल सकते हो?
और छाती-जांघ से तो तुम
चलने की सोच भी नहीं सकते,
अपने दिमाग और दिल का इलाज कराओ
जो अहम् के नशे में खराब हो चुके हैं।
हम हाथ-पांव हैं समाजी-शरीर के
पैरों की बदौलत ही टिका पाते हो
अपना बोझ धरती पर और
हाथ से ही कौर दाल पाते हो रोटी की
जिसकी भूख हमें भी है।
जिंदा रहने के लिए
टहलने-दौड़ने के लिए-
हमें भी मजबूत रखो
समाज को लूला-लंगड़ा मत बनाओ
हमारा नाम मत पूछो
नाम में क्या रखा है
काम देखो।

ठप्पों की थोप महिला पर

मैं बिंदी नहीं लगाऊँगी
मैं चूड़ी नहीं पहनूँगी
मैं माँग नहीं भरूँगी
फिर सुहागिन कैसे कहलाऊँगी?
न मैं माया, न ही छाया
न कोई गुलदस्ता
न ढोल-ढोर पिटने के लिए
न ही बाजार का माल बिकने के लिए
न ही कोई मशीन : बच्चे जनने के लिए,
मैं भी एक इंसान हूँ
मैं संगिनी हूँ - अर्धांगिनी नहीं
मां-बहन हूँ - नौकरानी नहीं।
पति को परमेश्वर और
मुझे धर्मपत्नी कहना
आदमियत की कोई गहरी साजिश है,
मेरी साइलेंस के कारण ही
मुझे शादी के लाइसेंस का
अपने पास रखना जरूरी है
तुम्हारे सभ्य समाज में
ठीक से जीने के लिए।
मुझे कुदरत से मिला
अलग तरह का तन
दमन किया सबने मेरा मन

माना सदा मुझे पराया धन
पर निरंतर सवाल करती है-मेरी रूह
सरनेम मैं ही क्यूँ बदलूँ शादी के बाद
व्रत मैं ही क्यूँ रखूँ करवा-चौथ का
बुरका मैं ही क्यूँ पहनूँ
राखी मैं ही क्यूँ बाँधू?
तर्क (या फिर कुतर्क) चाहें थोड़ा बदले हों
पर धारणाएं वही हैं-
जहां नारी की पूजा होती है।
वहां देवता बसते हैं
आखिर हैं तो वे भी पुरुष ही
इसलिए मुझे स्वर्ग से डर लगता है
पर मैं नरक का द्वार नहीं हूँ
डस्टबिन या पायदान नहीं हूँ।

आधा है चन्द्रमा, रात आधी
आधी है अपनी आबादी
इस आधे-अधूरे जीवन में
हक है हमारा आज़ादी

रौशनी के खम्भे

सर पर उठाये
रौशनी के खम्भे
चलती धीरे-धीरे
बारात में
क्या सोच रही है वो?
साथ में चल रही हैं
मोटी-भारी औरतें
लादे हुए जेवर
पुते हुए चेहरे
नशे में चूर
नखरे-सँवारती
मस्ती से मदमाती चाल में।
बीच-बीच में
जब कारवाँ रूक जाता है
नाचने लगते हैं बाराती
वो "बेचारी" खड़ी हो जाती है
खम्भे को सिर पर संभालती
ताकती रहती है इंतजार
कब नाच थमेगा
और वो बोझ उठाए
खड़े रहने की
पीड़ा से मुक्त होगी।
बारात पहुंच गई है मंडप

रौशनी फैली है चारों ओर
अब उसकी जरूरत नहीं
द्वार से उसे और
उसकी सखियों को
वापिस मोड़ दिया जाता है,
जो अभी भी उठाये हैं
सर पर ऊंचे
रौशनी के खम्भे
पर अब उनकी चाल है तेज जरा
शायद चालीस रुपये पाकर
या जल्दी घर पहुंचने को :
खाना बनाना है
बच्चों के लिए
जो भूखे ही सोने की
कोशिश कर रहे होंगे
उनके पेट में बारात के
बाजे बज रहे होंगे।
वह भी अभी भूखी ही है
और बाराती..... प्लेटें चाट रहे हैं।
कल एक और शादी है
उसे भी बुलावा मिला है
रौशनी के ठेकेदार से
आजकल लग्न का मौसम है।

अपने ही दुश्मन

मैं खड़ा था जूस की दुकान पर
एक दोस्त के साथ
दो गिलास बनाने का आर्डर देकर
पीछे से एक बुढ़िया आई
और चंद सिक्कों के लिए हाथ फैलाये।
मैंने उससे पूछा-जूस पियोगी ?
और उसके चेहरे पर खुशी देखकर
तीसरे गिलास के लिए कहा
तो दुकान पर तैनात मजदूर ने
(वो मालिक तो कतई नहीं था)
नफरत की नजर से देखा।
क्यों होता है ऐसा संघर्ष
एक ही वर्ग के लोगों में :
बेटे जनने के लिए
बहू को कोसती सास,
मेकडोनाल्ड के गेट पर
अन्दर जाने से मुझे रोकता चौकीदार
मेरे कपड़ों को देखकर,
अंग्रेजी किताबों के स्टाल पर खड़ा
हिन्दी ही पढ़ सकने वाला सेल्स-बॉय
मेरे चेहरे को देखकर कहता
मन-ही-मन
''ये इंग्लिश की किताबें हैं''

कोल्हू के बैल और बछड़े

बच्चों का होम-वर्क
बीबी का हाउस-वर्क
साहब का आफिस-वर्क
सभी मशीन बने हुए हैं
क्लॉक से चलते
स्कूली प्रोजेक्ट बनाते,
किचन में और आफिस में
सब घालमेल है
कैरियर में और फैमिली में
सबकी बनी रेल है।

जुटे हैं परिवार के
सारे लोग
समाज में अपना
कद बढ़ाने में
साथ रोटी नहीं खाते
साथ गप नहीं लड़ाते
हाँ....
देख लेते हैं
सास-बहू जैसे सीरियल
साथ-साथ
और कर लेते है
सुबह का योगा
इडियट बॉक्स के सामने बैठकर
दिन-भर जिन्दगी की
वर्कशाप में खटने के लिए।

नेचर-वॉच

सनराइज और सनसैट
देखने जाते हैं दूर
दूर पर लोग
उन्हें अपने घर की छत से
सूरज देखने की आदत
जो नहीं रही।

दैनिक भास्कर पढ़कर
सब कुछ जानने की कोशिश में
वो सुबह घर के बाहर
उदय हो रहे भास्कर को
देखने से वंचित रह जाते हैं।

सर ऊपर उठा कर
चल नहीं सकते वो, गगन में
उड़ते परिंदों को निहारने के लिए
जिनकी आवाजें सुनाई नहीं देती
ट्रैफिक के शोर में।

शीतल बयार की सिहरन को
थोड़ा रूककर महसूस करने में
उन्हें डर लगता है
कहीं पीछे न छूट जाएं
जमाने की दौड़ में।

अब तो बस
आंधी, बाढ़ या तूफान का
इंतजार रहता है
कुदरत का नजारा
लूटने के लिए।

ऐसा ही रहा तो
शब्दकोष से उड़ जाएगा
आसमानी रंग का नाम भी
हवा की तरह।

पंचवर्णीय बसंत

(1) आज

कैलेंडर में लिखा है
आज बसंत-पंचमी है
इसलिए मान लेता हूं
बसंत आ गया है
ठीक उसी तरह जैसे
टी.वी. और अखबार में
अपने ही शहर का
तापमान देखकर
ज्यादा गर्मी या ठंड लगती है।

(2) ऋतुराज

मौसमों का बादशाह है
इसीलिए शायद अमीरों का ही
होता है बसंत अब
और त्यौहारों की तरह
जिन्हें बाजार ने हड़प लिया है
ठीक उसी तरह जैसे
आज के राजाओं
(नेता-व्यापारी-नौकरशाह-बाबा) ने
जनता की खुशियों को।

(3) रंग

पीले रंग का दिन है आज
फूल, मिठाई, कपड़े-सभी पीले

तो या तो तू पी ले
या फिर येलो कलर की गाड़ी में बैठकर
उत्सव मना ले।
ठीक वैसे ही
जैसे सफेद साड़ी पहनकर
वो खुद को पवित्र और शांत समझती है
जैसे हर रंग की लौह-पटलें
रास्तों और बस स्टैंडों पर लगाकर
ग्रीन किया जा रहा है
राजधानी की सड़कों को
और लाल रंग का झंडा लेकर
वो इन्कलाबी बन जाते हैं
रंग-दे-बसंती गीत गाते हुए।

(4) माली

उसका भी है बसंत थोड़ा-सा
जिसने फूलों की पौध लगाई
और उन्हें संभाला
बगीचे की मालिकन के लिए
जो आज बहुत खुश है
जूड़े में पीले फूल लगाकर।

(5) उत्सव

पथ में नहीं दिखा वो नज़ारा
जो किताबों में पढ़ा है

जो गीतों में सुना है
स्कूल जाते हुए बच्चों की
यूनिफार्म भी पीले रंग की नहीं है
न ही उनकी प्रेयर में सरस्वती का जिक्र है
इसलिए कहता हूँ
आज बसंत पंचमी नहीं है।
बस, एक और दिन है
खुशफहमी का
कि नया मौसम आ गया
अंत कभी होगा नहीं
गुलामी का, गरीबी का
जिनसे चेहरे पीले पड़े हैं उनके।
क्लाइमेट-चेंज की खबरों के शोर में
बसंत न जाने कहाँ खो गया,
अरे ये लो ... बस आ गयी
चलो चलें बैठकर इसी में
बसंत मना लें,
प्लास्टिक के फूलों का
गुलदस्ता गोद में रखकर।

मौसम

हम हर मौसम को
कोसते रहते हैं-
गर्मी बहुत तेज है
ठंड बहुत ज्यादा है
बरसात थम नहीं रही
बरसात पड़ नहीं रही-
इन्हें सहना ही होगा
मजबूरी से या मजबूती से
इंसानी छतरी का सीमित इंतजाम
कब तक और कितना टिकेगा
अबूझ कुदरत के सामने
उस नीली-छतरी वाले की :
जो न दिखता है
जो न सुनता है
पर करता है
अपने मन की,
उसकी रजा में राजी रहना ही
एकमात्र विकल्प है-
आखिर यह मौसम भी बदलेगा ही
और वक्त गुजर जायेगा।

आस्था का विज्ञापन

ऐ भई!
भोर हो गई
नींद से जगो
डुगडुगी बज रही है
बाबा का मॉल खुला है
हर माल ले लो सिर्फ सौ रुपये में-
अंजन आंखों के लिए
मंजन दातों के लिए
तेल मसाज के लिए
चूरन हाजमे के लिए।
हमारे बाबा ऑल-इन-वन हैं
गुरु-बापू-स्वामी-अम्मा
हरफनमौला और मस्तमौला
बंदर के करतब सिखाते हैं
सस्ता लंगर खिलाते हैं
जनरल नॉलिज की अटपटी बातें बताते हैं
चटपटे जोक्स सुनाते हैं
सेहत के लिए खूब हँसाते हैं
और कभी-कभार जादू भी दिखाते हैं।
वे कमाल हैं
असंख्य श्री के सरनेम वाली
महान आत्मा हैं
उनमें कई आत्माएं हैं

दशानन की तरह
उनके कई मुखौटे हैं
सर्कस का मदारी
मंदिर का पुजारी
दुकान का पंसारी
धंधे का व्यापारी।
पर बरखुरदार, खबरदार!
मॉल के बाहर ही खड़े रहना
स्मॉल लोगों का
अन्दर आना मना है
आज विशेष योग-कक्षा चल रही है
-नेताओं और अभिनेताओं के लिए
-डॉक्टर और इंजीनियरों के लिए।

गुरु-सिख

मेरी लम्बी दाढ़ी देखकर
बच्चे मुझे बाबा कहते हैं
बड़े ज्ञानी और
सब मुझे बुजुर्ग समझते हैं।
टोकते हैं मजहबी ठेकेदार
मुझे पगड़ी न पहनने पर
कोसते हैं एनजीओ वाले समाजसेवी दोस्त
सरकारी नौकरी में होने पर और
ऑफिस वाले सहकर्मी
उनसे अलग सोच रखने पर।
भेड़ों की भीड़ में
शामिल नहीं होना मुझे और
न ही हांका जाना चाहता हूँ
कर्म-कांडी डंडों से।
विस्तृत गगन में
आजाद परिंदे की तरह
उड़ना है मुझे
फ्रेम और संस्थाओं की
घुटन कैद से
मुक्ति चाहिए मुझे
सीखते हुए खुद ही की रौशनी में
अंधेरों से जूझना है मुझे।

भयंकर भगवान

मैं नहीं जानता
भगवान को कब और किसने
गढ़ा होगा।
पर उसके नाम पर
खूब रोटियां सेक रहे हैं
चारों तरफ फैले हुए दलाल और एजेंट
हर मौके : जन्म - शादी - मौत : पर
उनको अपना हिस्सा चाहिए
कर्मकांड की आड़ में।

वो डराते हैं भगवान के नाम पर
लोग डरते हैं भगवान के नाम पर
उनकी दुकानें चलाने में
सब मदद करते हैं
मीडिया-व्यापारी-नेता
और कुछ हद तक
हम पढ़े-लिखे लोग भी
चुप रहकर या
फिर खुद ही
उस भगवान से डरते हुए
संस्कारवश
जिसको न जाने
किस समझदार और भावुक इंसान ने
गढ़ा है।

मिशन का शमशान

शुरू होती है
कोई भी संस्था
किसी खास मकसद से
इक महत्वाकांक्षा होती है
किसी व्यक्ति की
सपना कुछ नया करने का
पर जैसे जैसे वक्त गुजरता है
उसकी अंतात्मा से अहम
हो जाते हैं बाहरी कपड़े
हैं कितनी शाखाएं विदेश में?
मैम्बर्स में हैं :
कितने इंजीनियर और कितने डॉक्टर?
संख्या से संस्था का विकास आंकते हैं
संस्था को चलाना ही
मकसद हो जाता है,
फाइनंस-फंड-हाउसकीपिंग
और स्टाफ-मीटिंग में
उलझ जाते हैं,
कार्यक्रम रखने पड़ते हैं
अस्तित्व को बचाने के लिए
खुद को साबित करने के लिए।
जब मूल संस्थापक
चला जाता है दुनिया छोड़कर

तो दिशा ही बदल जाती है.
किताबों और फोटो में
सीमित हो जाती है संस्था
धीरे-धीरे बिखर जाती है।
घुटन भी जरूर होती होगी
भीतर के कुछ लोगों को
किंतु किसी राह पर
बहुत आगे निकल जाने के बाद
वापिस मुड़ने के लिए
मजबूत कलेजा चाहिए।
नियमावली की जकड़न में
कट्टर-कैडर तो बन सकते हैं
पर सार्थक कुछ भी
नहीं किया जा सकता।

इंसटेंट-मैसेजिंग

पढ़ा इक किताब में :
इजहार करते थे जज्बातों का
उस जमाने में प्रेमी
चांद को देखकर
अपनी-अपनी छत से
दूर रहते हुए भी
तरंगें भेजते रिश्तों में
जरिया बनाते हुए कुदरत को।

कबूतरों को संदेशा पहुंचाते हुए
तो मैंने नहीं देखा
पर अपनी इसी जिन्दगी में
पोस्टमैन को जरूर मिला हूँ
खत और खबरें ले जाते हुए,
एसटीडी की पल्स चौथाई होने का
इंतजार करते थे देर रात तक
आज की मोबाइल-क्रांति से
दस बरस पहले ही तो।

सोचकर घबराता है मन
मेरे बूढ़ा होते-होते
कितनी बदल जाएगी दुनिया
और कितना विसंगत हो जाऊंगा मैं
वक्त की रफ्तार में
कहते हुए खांस-हांफ कर
"हमारा भी जमाना था।"

संदेश बटन पर

कनेक्शन तारों के क्रिस क्रॉस
नेटवर्क के परिपथ में
धारा के प्रवाह का अहसास दिलाते
और नेट-वर्क (कुल-कार्य : जीरो)
यही तो इस जंजाल का कमाल है
इतना तामझाम और
सिफर अंजाम।
कितनी आसान हो गई है आजकल
संदेशों की आवाजाही
फारवर्ड का क्लिक
कैंची-गोंद और कापी की खिचड़ी-
यांत्रिक और इमपरसनल।
तुम मेरी तारीफ करो
मैं तुम्हारी
तुम मेरी शादी में नाचना
मैं तुम्हारी में
तुम मुझे मूंगफली बेचना
मैं तुम्हें-
दोनों खुश रहेंगे
तालियां बजाने के लिए
दो हाथ ही काफी हैं
और उनकी गूंज सुनने के लिए
तो फिर एक कान ही काफी है।
आपसी समझ के लिए
सचमुच
ताल-मेल बहुत जरूरी है।

क्लाइमेट-चेंज

अमीरों का फैशन है
उन्हीं का चोंचला हैं
कितनी बेईमानी है
पर्यावरण पर चर्चा करना
जब हम कूड़ा फेंक देते हैं
पब्लिक सड़क पर
पानी के फव्वारों से सींचते हुए
अपने प्राइवेट लॉन
और सिर्फ मीडिया में
ग्लोबल गर्मी पर
चर्चाएं पढ़-सुन कर
खुद को गंदी बस्तियों के
उन मजबूर बाशिंदों से
ज्यादा जिम्मेदार समझ लेते हैं
जो खुले में हगते-मूतते हैं
और
जैसा पानी मिल जाए
पी जाते हैं।

मेधा बनाम मैगा

मैं नदी हूँ
प्रवाह मेरी प्रकृति है
धारा मेरी धारणा
मुक्ति मेरा मकसद।
सागर में मैं खुद जाकर मिलती हूँ
पर तुम्हें किसने हक दिया
मेरी राह में रोड़े अटकाने का
ऊँचे डैम बनाकर।
तुम्हारे विकास की अंधेर में
अंतर्नाद बन गया है क्रंदन
संबंध तो ठीक है
बांध मत बनाओ मुझ पर
मुझे निर्बाध बहने दो
कूड़ा-कचरा फेंककर
नाली मत बनाओ,
मुझे जीने दो
दीन मत बनाओ,
मुझे आजाद रहने दो
मुझे नदी ही रहने दो।

जाके पैर न फटे बिवाई

कैसे समझ सकता है दर्द
आदमी औरत का
सवर्ण दलित का
अमीर गरीब का
पेटू भूखे-प्यासे का
और गृहस्थ एकला का,
फिर भी लिखेंगे
अखबारों में लेख
बढ़िया कैरियर वाले ही
बेरोजगारी पर।
हाल
हाशिए के लोगों का
समझने के लिए
उनके बीच
उनसा ही रहना पड़ेगा,
मुझे लगता है
समानुभूति और स्वानुभूति
दोनों ही जरूरी हैं
ईमानदारी से सच :
कहने के लिए
लिखने के लिए।

सीधे-सादे लफ्जों में

कितना मुश्किल है-
सादगी और ईमानदारी पर कविता लिखना
आज अहसास हुआ।
जब चारों तरफ माहौल हो
झूठ, दिखावे और धोखे का
देते हों सौगात प्यार से ठेकेदार
लेते रहें बिना हिचक सरकारी सेवक :
मिठाई का डिब्बा दीपावली पर
नई-नवेली डायरी नव-वर्ष पर
होटलों में होती रहें मुलाकातें
ऑफिस के फोन पर रात में लंबी बातें:
दलाली और समीकरणों की।
जब रिश्वत मांगनी न पड़ती हो
खुद ही मिल जाती हो
क्यू तोड़ने के लिए तत्काल सेवा की
फीस भी लीगल हो जाए
हर काम का दाम तय हो पहले से
अलिखित करार के रूप में:
काम हो जाएगा, दाम पहुँच जाएगा
काम करे जो दाम लेकर :
वह ईमानदार
काम न करे जो दाम लेकर भी :
वह बेईमान
जो काम करे और दाम भी न ले :

वह पागल।
कमाओ किसी भी तरह
बस कुछ हिस्सा दान कर दो
काले को सफेद करने के लिए
खूब जमकर खाओ और
पेट कम करने के लिए
थोड़ा प्राणायाम कर लो।
सचमुच बहुत मुश्किल है-
इस दौर में ऐसे विषय पर लिखना
क्योंकि : या तो इसे नैतिकता का प्रवचन
मानकर नहीं पढ़ा जाएगा
या इसके लेखक को सनकपन का प्रमाण-पत्र
दे दिया जाएगा।
संवेदनाएं शून्य हो चुकी हैं
ना ही कोई कचोट होती है दिल को
माना और स्वीकारा जा चुका है
: सभी ऐसा करते हैं
: इतना तो चलता है
: यही तो विकास है
: यही तो बाजार है
दिमाग से दिल की दूरी बहुत बढ़ चुकी है
तर्क भावनाओं पर हावी है आज
आज के भागम-दौर में
कविता लिखना :
वो भी ऐसे सीधे-सादे विषय पर
वाकई बहुत मुश्किल है।

देख तमाशा इंडिया का

सरकार के सफेद हाथी और
जनता की चींटियों के
दरम्यान हुआ :
इक फुटबाल मैच :
हाथी ने बाल्टियां भरकर दाल पी
वह और मोटा हो गया
चींटी को महंगाई की वजह से
इक चम्मच शक्कर भी
नसीब न हुई
वो बेचारी दुबली हो गयी।
कॉमन आदमी की वैल्थ और
गरीब मजदूरों के खून से
सजे-संवरे स्टेडियम में
टीमों के उतरने से पहले ही
सबने मान लिया था-
जीतेगा तो हाथी ही
पर उन जिद्दी चीटियों ने
औकात सिखा दी
सूँड और कानों में घुसकर
हाथी को नानी याद दिला दी।

खेल खेल की आड़ में, लूट सके जो लूट
स्टेशन पर रह जाएगा, रेल गई जो छूट

बिक्री-घर

अफसर की कोठी
रंडी का कोठा
एक जगह जमीर बिकता है
दूजी जगह शरीर।
दलाल भी दोनों जगह हैं
नाच दोनों जगह चलता है
मेक अप और मास्क के पीछे
खरीददारों के लिए,
अफसर में कोई अल्हड़ लावण्य नहीं
उसके पास कोई बिस्तर भी नहीं
बस कुर्सी और कलम का कमाल है।
कोठा कोठी से बड़ा है
वहाँ पेशा ईमानदारी से चलता है
पर कोठी का दाम बढ़ता जा रहा है
और कोठे को पुलिस वाले
बंद कराते जा रहे हैं।

पेयर

दो पैर हैं मेरे
चप्पल एक-
दूजी जन्म के समय ही
कहीं जा छिटकी
उसे तलाशने में ही
बीती जा रही है जिन्दगी
आधे-अधूरे जीते हुए,
कभी मिलती-जुलती चप्पल देखने पर
उसे पहनने की कोशिश करता हूँ
तो पता लगता है
वो और किसी की थी
थोड़ी निराशा के बावजूद
फिर जुट जाता हूँ खोज में
पर अब ढूँढ़ने-फेंकने के चक्कर से
इतना ऊब चुका हूँ
कि सोचता हूँ
दूजा पैर ही न होता
तो अच्छा था,
कभी मन कहता है
नंगे पांव ही चल पड़ूँ
जिन्दगी की टेढ़ी-मेढ़ी राहों पर
उतारकर इस एक चप्पल को भी
अपने दोनों पैरों को लहूलुहान करने।

बैशाखी मुझे नहीं चाहिए
और हाथ में एक चप्पल
पकड़े रहने से
झूठी उम्मीद बनी रहेगी,
चलो! ऐसा करता हूँ
इस एक चप्पल को भी फेंक ही देता हूँ।
हकीकत तो यह है कि
सभी समझौते की चप्पल को ही
सही मानकर घिसट रहे हैं
क्योंकि नंगे पैर चलने की
उनमें हिम्मत नहीं है।

बराबरी का रिश्ता

न मैं समंदर हूँ
न तुम दरिया
हम धाराएं हैं
समान होने की कोशिश में
समा तो नहीं पाते हम
इक दूसरे में
पर हकीकत का सामना
करने की बजाय
सपनों की खुशफहमी में
खुद को डाल देते हैं।
बेहतर पनपती है दोस्ती
जब हम मंजूर करते हैं
सखा को जैसा वो है
स्पेस देते हुए उसे
उड़ने के लिए
गगन में।
समझ, संवेदना और सहयोग का
संगम जरूरी है
प्रेमसागर में
डूब जाने के लिए।

प्यार का बाजार

प्रेम कहाँ है, प्रेम क्या है, प्रेम क्यूँ है
वहाँ भी नहीं, जहाँ पहरेदार खड़े हैं
वहाँ भी नहीं, जहाँ पार्क में जोड़े लेटे हैं
वहाँ भी नहीं, जहाँ घर में बच्चे हैं
वहाँ भी नहीं, जहाँ जंगल में अकेले हैं।

प्रेम होता है या नहीं होता है
इसकी कोई खास वजह नहीं होती
इसकी कोई खास जगह नहीं होती
प्रेम नाप-तौल या गणित नहीं होता
न ही यह बाजार की नौटंकी है
न ही यह खेल-कूद है तन का।
यह तो मुक्ति का पैगाम है
यह तहजीब है इंसान की
उसकी रूह की जरूरत है।

प्रेम उत्थान का पथ है, पतन का नहीं
प्रेम शांति का पथ है कलह का नहीं
प्रेम संकीर्णता नहीं, विस्तार का प्रतीक है।
प्रेम की सीमाएं नहीं होती
प्रेम की अभिव्यक्ति मात्र हैं :
संभोग और विवाह :
पर यही केवल प्रेम नहीं है,
प्रेम है-
ममता, करूणा और संवेदना

भावनाओं और विचारों का संगम
प्रेम संयोग और वियोग है।

प्रेम पवित्र शब्द है
इसे विकृत मत बनाओ,
व्यापार का त्यौहार नहीं है प्रेम
यह प्रेमी के दिल की पुकार है,
मन मंदिर है
इश्क इबादत है।

प्रेम की कोई परिभाषा नहीं होती
प्रेम की कोई भाषा नहीं होती।
ताजमहल बनाकर उड़ाया था
मजाक इक शहंशाह ने
अब प्रेम के संत का
तुम मजाक मत उड़ाओ।
प्रेम करो किसी से भी
खुले मन से करो
और उसकी आजादी के लिए।

प्रेम करो:
खुद से, खुदा से,
कुदरत से और उसके बंदों से।
प्रेम को प्रेम ही रहने दो
उसे राजनीति के दलदल में न घसीटो।
ढाई अक्षर ही काफी है
उसे चौदह फरवरी मत बनाओ।

कुछ तो लोग कहेंगे

इस धरती पर
इंसान की जिन्दगी में
सबसे बड़ा रोग
क्या कहेंगे लोग!
इस समाज को
तनिक भी फर्क नहीं पड़ता
किसी के दर्द का
किसी के दुख का,
यह बड़ा निर्मम है
चुपचाप जीने नहीं देता
चैन से मरने भी नहीं देता।
एक ही रास्ता है
इसकी परवाह मत करो
बस अपनी जिन्दगी जीओ
जो खुद को ठीक लगे :
वही करो
वही लिखो
वही कहो।

अति का भला न बोलना

बहती हुई नदी के किनारे
टहलते हुए मन खुश होता है
जीवन के प्रवाह को
उसमें देखता हुआ,
उफनती हुई नदी से डर लगता है
और सूखी हुई नदी तो मन को
उदासी में ही धकेल देती है:
उत्साह, भय और निराशा के
इन आयामों को खुद में समेटे
यह है वही नदी।
सृष्टि के तत्वों में संतुलन
बहुत जरूरी है
इनके अति-रूपों से
घबराहट होती है
बाढ़ हो या रेगिस्तान
ज्वालामुखी हो या तूफान।
सौम्यता का आधार है
समता और सरलता
संगीत के लिए
वाद्य-यंत्र के तारों की
मर्यादा जरूरी है।
बीच का रास्ता
समझौता नहीं
समझ का प्रतीक है
कुछ भी नहीं और
सब कुछ के
मध्य ही
यह सुन्दर संसार है।

मास्टर गोकुलचन्द के नाम

मुझे याद आते हैं
वो दिन बचपन के
जब मैं तख्ती-दवात और कलम लेकर
कंधे पर भारी बस्ता ढोता
जाता था-
मंदिर वाले स्कूल में
जिसे उस वक्त विद्या-मन्दिर नहीं
कहा जाता था
और न ही उसमें पढ़ाने वाले
बूढ़े मास्टर गोकुलचन्द
को सर या टीचर।
उनकी आंखें पत्थर की थीं
हाथ में छड़ी रहती थी
धोती पहनते थे गंदी-सी
आवाज कड़क थी
गणित उनके लिए खेल था
बच्चे उनका जीवन थे
और वह चबूतरा ही उनकी कुर्सी थी
जिस पर बैठ वह
पहाड़े याद कराते थे
बच्चों से घिरे
उन्हें डांटते-पीटते
मुर्गा बनाते, गरियाते-झल्लाते

फिर भी बार-बार समझाते।
सांस चलती थी तेज
पर लगे रहते पढ़ाने में
दोपहर तक बिन खाये,
घंटी भी खुद ही बजाते थे
सभी कक्षाओं को अकेले पढ़ाते थे
स्कूल जब बंद हो जाता
तो कोई खाना दे जाता,
खाकर और कुएं से पानी पीकर
नीम के पेड़ तले
सुस्ताने के लिए जमीन पर ही
पसर जाते थे।
शाम को टहल आते थे
बाजार की ओर,
किसी बच्चे का दुकानदार बाप
मास्टर जी को बुलाकर
चाय-हुक्का पिला देता
और घूम-फिर कर
वे आ जाते मंदिर में
जहां थे खुद पूज्य
सिखाते हमें सबक जिंदगी का
वे मेरे प्रथम टीचर थे
: मास्टर गोकुलचन्द :
सोई गांव के जाग्रत पुरुष।

तरक्की का सफर

बहुत पहले लोग नंगे रहा करते थे
तब वे सीधे-सादे थे
प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या से परे
खुद ही में मस्त
फिर कपड़े पहनने लगा इंसान
शिष्टाचार हावी होता गया उस पर
वह समझदार हो गया
शायद थोड़ा चालाक भी
अपने दिल की बात को छुपाना
आ गया उसे।
वह मुखौटे बदलने लगा-
घर का अलग
ऑफिस का अलग
बात को टेढ़े तरीके से
कहने का हुनर सीख गया।
अब वह ठंड में न नहाने पर भी
उजली कमीज पहनकर
दोस्तों को भ्रम में डाल देता है।
वो अब सभ्य हो गया है
हाथ से नहीं
कांटे-छुरी से खाना खाता है
बुफे वाली पार्टी में शामिल होकर और
यूरोपियन कोमोड पर बैठकर

उसकी अकड़ थोड़ा और बढ़ जाती है
मैनीपुलेट कर लेता है
हालात और रिश्तों को।
अब अधनंगापन बढ़ रहा है
न पूरे कपड़े, न पूरे दिगंबर
जिसे समझना ज्यादा मुश्किल है
वक्त का यह दौर
मुझे डरावना लगता है।

स्वार्थ के खिलाफ

बहुरंगी सृष्टि में
इस धरती के
अलावा भी बहुत कुछ है
मसलन
आसमान-हवा-धूप-रौशनी
सिर्फ इंसान ही नहीं है धरती पर
पेड़-पौधे और पक्षी-जानवर भी हैं
पैसा ही नहीं सब कुछ जिन्दगी में
रिश्ते-नाते और उनका प्यार भी है
देखें सही चश्मे से अगर तो
इस Earth पर अर्थ को ही
अर्थ समझना
नादानी है।
दौड़ने से न होगा सब कुछ हासिल
दिमाग से सच्चा होता है दिल
अक्सर हकीकत से सुंदर होते है सपने
और कभी पराये भी हो जाते है अपने।

आउटसोर्सिंग

तुम्हारे पास
गेहूँ उगाने के लिए जमीन है
पर आटा खरीदो दुकान से,
गायें (मां) हैं घर में पर
दूध खरीदो मदर-डेरी से,
मशीनें हैं फैक्टरी में
पर सामान बाहर से खरीदो :
कामन-वैल्थ का खेल खेलते हुए
हम ठेकेदार
नौकरशाही के साथ मिलकर
खूब गोल कर रहे हैं
डी (दिल्ली) में।

नफरत का बार्डर

कौन ज्यादा देशभक्त है-
दिखाने की होड़ लगी है
नुमाइश है, जुनून है
नारे हैं, झण्डे हैं
शोर है, जोर है
मन में सबके चोर है।
खुदी के फेर में
खुदा के ही बंदों से
नफरत और दूरीः
यह कैसा देशप्रेम है?
मोहांध और संकीर्णता का पर्याय।
बार्डर पर गूंजती आवाजें
बोर भी करती हैं-
शायद दिलों में डर भी।

इस पार भी
इंसानों की वैसी ही शक्लें
उस पार भी,
ये इंसानी हदें हैं
जो पक्षियों और पशुओं की
समझ में नहीं आती
चूंकि वे कम समझदार हैं
इंसान से

जिसने बनावटी रेखाओं से
बांट दिया है
धरती को, कौम को।
आकाश पर अभी उसका जोर नहीं चला
इसीलिए चिड़िया-कौवे अभी
उड़ रहे हैं आजाद
गगन में
उनकी कोई जाति नहीं (चाहे प्रजाति हो)
उनका कोई मजहब नहीं (चाहे पंख अलग हो)
उनकी कोई भाषा नहीं (चाहे आवाजें अलग हो)
वे परिन्दे हैं-आजाद
हम दरिन्दे हैं-बरबाद।

अमी गांधी बोल्छे

जब मैं जिंदा था
अपने अन्दर की आवाज सुनकर-
वही लिखता था
वही करता था
वही कहता था-
जो मुझे उस वक्त
सच और ठीक लगता था
आज मैं सुनता हूँ
बाहर की आवाजें
जिन्होंने मुझे या तो भगवान बना दिया है
गीता हाथ में पकड़ाकर
महात्मा और बापू से नवाजा हुआ
लाठी-चश्मे का बुत
या फिर शैतान
इतिहास की हर घटना के लिए जिम्मेदार-
भगत सिंह की फांसी
अम्बेडकर का समझौता
बोस की खिलाफत
जिन्ना का तुष्टीकरण
नेहरू को गद्दी-
हां, मैं थोड़ा जिद्दी जरूर था
पर गुंडा नहीं
जो मेरे नाम के आगे

गिरी, गर्दी या बाज़ी लगाकर
मुझे बना दिया
मुन्ना मोहन से तुमने,
गाड से मुझे विशेष प्रेम था
इसलिए ही शायद गोडसे ने ही
मुझसे "हे राम" कहलवाया
मैं दोषी हूं
हरिलाल और मनु-बेन
तुम पर प्रयोग करने का।

मुझे माफ करो
मैं साधारण इंसान था
तुमने मुझे महात्मा बना दिया
न मुझे राजपाट की लालसा थी
न ही मुझे राजघाट चाहिए
न मेरी वजह से आजादी मिली भारत को
न ही मेरी वजह से दुनिया बदलेगी,
मुझे मत घसीटो
संस्थाओं, तुलना और बहसों में
मेरे नाम को मत भुनाओ।
मैंने वहीं किया
जो मुझे जँचा
तुम वही करो
जो तुम्हें जँचे
हर एक का अपना सच होता है

हर एक का अपना पथ होता है
बस लोकतंत्र में अपनी जिम्मेदारी समझो
ईमानदार इंसान बनो
मुझे पढ़कर चर्चा करने से क्या होगा?
बन्दर 3 या 5 हो सकते थे
व्रत भी नौ ग्यारह या तेरह
कोई फर्क नहीं पड़ता
लकीर मत पीटो
अपना सच तलाशो,
इस बात का कोई मतलब नहीं
मैं होता तो इस कम्प्यूटर युग में
क्या इन्टरनेट यूज करता ?
अहम यह है कि तुम
जो अभी जिंदा हो
क्या करते हो?
खुद को मुझसे सही या
मुझे आज गलत ठहराकर
तुम कुछ नहीं पाओगे
अपने आप से भागकर कहां जाओगे ?
तुम निश्चिन्त रहो
मैं दोबारा नहीं आऊंगा
और इतिहास शायद दोहराता भी नहीं
खुद को हूबहू:
उसी ईसा, बुद्ध, नानक या फिर मुझे
देखकर धरती पर

तुम्हें भगवान से ज्यादा
भूत पर यकीन हो जायेगा
और सृष्टि की अनंतता से
यकीन उठ जायेगा।
मैं तो अपना जीवन जी कर
जा चुका बरसों पहले
मेरे जैसे बनने की कोशिश मत करो
कोई किसी की कार्बन-कॉपी नहीं होता,
अपने दीपक खुद बनो
एकला चलो
मुझे कब्र से बाहर मत निकालो
मुझे चैन से रहने दो
कोई सच अंतिम नहीं होता
यह व्यक्ति और वक्त के साथ बदलता रहता है।

छब्बीस जनवरी

न जाने क्यूँ
मुझे उन शब्दों से घबराहट होती है
जो किसी को विशेष
और बाकियों को शेष बना देते हैं
वर्गीकरण करते हुए-
धर्म, जाति,
जेंडर और भाषा की तरह
ऐसा ही एक शब्द है राष्ट्र।
हाँ-मुझे खतरनाक लगती है
राष्ट्र एवं नेशन की अवधारणा,
जो कृत्रिम दुश्मन बना लेती है
दूर-पड़ोस के राष्ट्रों को
और अपनी हिफाज़त की आड़ में
असलों के जमावड़े को सही ठहराती है,
परेड इसी राष्ट्र-गौरव की
झांकी है शक्ति-प्रदर्शन के तौर पर
"हमारे पास इतने टैंक हैं
हमारे पास इतनी तोपें हैं
हम किसी से कम नहीं हैं"।
राष्ट्र इक जुनूनी साजिश है
हुकूमरानों की
रियाया के खिलाफ
उन्हें गुमराह करने के लिए

गरीबी और शोषण की असली लड़ाई से।
मेरे लिए पाकिस्तानी गरीब
भारतीय अमीर से ज्यादा नजदीक है
और नेशनल या मल्टीनेशनल लुटेरों में
मुझे कोई फर्क नहीं नजर आता।
जमीन सबकी है
तकसीम तो हमने किया है इसे
पर अजीब बात है!
इखरी-बिखरी जमात को
इंटरकास्ट मैरिज, सर्वधर्मसमभाव,
राजभाषा, को-एड और यूनाइटेड-नेशंस के नाम पर
वसुधैव कुटुम्बकम के आदर्श को पाने के लिए
सम्मेलन और सेमिनारों का
सिलसिला चलता रहता है निरंतर।

ड्रेस-चेंज

पहनते थे पहले
दुपट्टा और पगड़ी
सभी लोगः
चेहरे पर नकाब
सिर पर टोपी
हया का प्रतीक था
नंगे सिर घूमना
बुरा माना जाता था।

अब जमाना बदल गया है
बहुत आगे बढ़ गया है
नंगा रहना ही
फैशन हो गया है।

लाया जा रहा है दुपट्टा
आंचल या सिर
ढकने की बजाय
मुंह छुपाने के काम
गरमी की धूप से,
लोगों की नजरों से
और पगड़ी पहनते हैं सरदार
स्मार्ट दिखने के लिए
हैलमेट के तौर पर।

इवेन्ट-मैनेजमेंट

आज फिर गया मैं
एक आयोजित कार्यक्रम में
उम्मीद से कि
कुछ हासिल कर लौटूँगा।
वही सब कुछ हुआ :
दीप-प्रज्ज्वलन
मुख्य अतिथि का उद्बोधन
दो शब्दों की लंबी श्रृंखला
परदा, बैनर, फर्श, अर्श
पानी की बोतलें
माइक, पोडियम, लाइट
श्रोता-दर्शक, मंच, वक्ता
और बीच-बीच में
स्वतः ध्वनित तालियां।
ईवेंट-प्रबंधन का कितना
सुगम और सहज
तरीका हो गया है, प्रोफेशनल
सिंगल विण्डो पर सब कुछ
मिल जाता है-
फूड, टेंट, साउंड, लाइट, हॉल
और कार्यक्रम के
स्पॉन्सर, वक्ता-परफॉर्मर भी।
मंच के लोगों

और सामने बैठे-देखते लोगों में
कितना भेद हो जाता है
जैसे मंच जवाब हो
और सामने केवल
सवाल करने वाले लोग।
सभी परेशान, बोर, बेचैन
किंतु सुनते-झेलते-झल्लाते
इंतजार करते कब
कार्यक्रम समाप्त हो
और भोजन शुरू हो।
अंत में .....
सभी मंच के लोगों से अपनी
पहचान का
सबूत देने की कोशिश में
जरा उनसे मैं भी मिल लूँ
जो यह भी नहीं सुनते
कि आप कैसे हैं कहाँ ठहरे हैं
बस अपनी अकड़ में
अभी भी बखानते जा रहे हैं
अपना ही व्याख्यान, उपदेश
और कि-
''हमने ऐसा किया
हम यह करेंगे
हम वह करेंगे''
सब बदल जाएगा

पर हम नहीं बदलेंगे
क्योंकि हम, हम हैं
वी.आई.पी मंचों के अध्यक्ष
और सर्वज्ञ।
एक और अनुभव
अब नहीं जाऊँगा।
पर नहीं, अब जाऊँगा
बस नाटक देखने
और इस कविता को
आगे बढ़ाने के लिए
मसाला इकट्ठा करने।
सब जानता हूँ या नहीं
पर जानना चाहता हूँ-
हिपोक्रेसी, डबल स्टैंडर्ड :
समाज की गति, स्थिति और दिशा
जो मुझे भी मालूम है
पर सुनूँ तो-
आयोजकों के तमाशों में
क्या हो रहा है आज
चलो, चलें देखने स्वाँग-
नचनिया, भटरिया और उपदेशक
इकट्ठे हैं
तालियां भी तो जरूरी हैं
उन्हें नचाने के लिए।

घबराहट

वक्त गुजारने के लिए
अखबार में सुडोकू खेलते हैं
टीवी के रिमोट पर चैनल बदलते हैं
बिन–बात पैर हिलाते रहते हैं
फोन पर बतियाते हैं
सोते हुए भी सपने देखते हैं
दिमाग के हर कोने को भर देना चाहते हैं
फिर क्यूँ कहा जाता है
खाली दिमाग शैतान का घर है
भरा दिमाग क्या भगवान का घर है?
धीमे चलने से डर लगता है
दौड़ते रहने से थकान होती है
वाकई जिंदगी बड़ी अजीब है!

चौसठ का खेल

उन्हें लगता है
वे खिलाड़ी हैं
शतरंज की बिसात के-
मोहरों को इधर-उधर चलाकर
शह और मात की
खुशफहमी में पड़े हैं।
चाल चलनी है
पैदल को पीटना है
हाथी को आगे बढ़ाना है
ऊँट को बचाने के लिए
घोड़े को बीच में रखना है।
रहम आता है
उनकी नादानी पर
कोई कठपुतलियों का
नाच नचा रहा है
उन अनजान महारथियों को।

एकला

वह अकेला है
अकेला किसी का नहीं होता
कोई उसका नहीं होता
दुनिया से अलग रहता है
सड़कों पर भटकता है
उसका कोई घर नहीं
मन उसका कहीं लगता नहीं।
सब या तो औपचारिकता निभाते हैं
या उसे उपेक्षित करते हैं।
निराशा की दहलीज पर
पहुँच जाता है कभी-कभार वो
फिर भी न जाने कौन
खींच लाता है उसे
इस नाटक में वापिस
कौन?
उम्मीद, निश्चय या वह अदृश्य शक्ति
जिसे वो अपना सारथी मानता है।
वह अकेला जूझता जिंदगी से
दुनिया की माया से
चलता एकला ही निर्जन पथ पर
जब छोड़ देते सब उसे अकेला।
वह अकेला ही काफी है
जीने के लिए

अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता
पर एकला–
अपने पागलपन और सनकपन से
बुद्धिमानों की महफिल में
खलबली जरूर पैदा कर सकता है
अटपटे सवाल उठाकर भीड़ में
नये जवाब तलाशने को मजबूर कर सकता है।
उसे नकारो, दुत्कारो और लताड़ो
दुनिया के समझदार रखवालों
ताकि उसे तुम्हारा रंग ही न लग सके
उसकी मदद करो
झिड़ककर और मजाक उड़ाकर
वह मजबूर नहीं वरन मजबूत है
चाहे भाग्यवान न हो
पर भगवान उसके साथ है।
एकला किसी से नहीं डरता
न ही किसी को डराता है
वह मुक्त है
और सबकी आजादी चाहता है।

रिक्शे का सफर

अरे भाई, चलोगे
कहाँ ?
तिलक-ब्रिज
कहाँ पर ?
जीपी.एफ., स्टेशन के पास
चलेंगे, पच्चीस रुपये लगेंगे
हम (मैं और एक गांधीवादी मित्र) दो थे।
पच्चीस नहीं, बीस लोगे
अच्छा, बाईस दे देना
मित्र ने कहा-''छोड़ो, बस से चलते हैं।''
मुझे रिक्शे में बैठना अच्छा लगता है
चाहे महंगा हो, समय हो यदि।
पता नहीं क्यों :
राजसी शौक-
राम-सीता की तरह रथ में बैठना
रिक्शे का धीरे-धीरे चलना
बैठकर इधर-उधर का अवलोकन
रिक्शे का परंपरागत रूप
रिक्शाचालक के प्रति दया-भाव
उसको भी रोजी-रोटी मिल जाए
खैर... बैठ गए रिक्शे में-
राजघाट से गांधी-पीस-फाउंडेशन की यात्रा के लिए-
स्वदेशी, चरखा, कुटीर उद्योग

शरीर–श्रम, स्पर्श–भावना पर
करते रहे गहन–चर्चा
और वो हमें ढोता रहा
उदास वह भी न था
भोजपुरी गीत गा रहा था
पूछा मैंने–
तुम कब से हो दिल्ली में ?
कहाँ रहते हो ? परिवार कहाँ है ?
रिक्शा अपना है क्या ?
कब तक चलाते हो रिक्शा ?
बोला वो इस सवाली बौछार के बाद–
बिहार से,
यमुना–पुश्ता पर झुग्गी में
बीवी–बच्चे देश में (वह परदेश में है)
किराये पर है रिक्शा
सुबह चार बजे से नौ बजे तक
और शाम आठ से रात ग्यारह बजे तक
खाना ?
सब मिलकर बना लेते हैं
हाँ– हमारे गांव के काफी लोग रहते हैं
सभी रिक्शा चलाते हैं ?
–नहीं, छोटा–मोटा काम करते हैं
: फैक्ट्री में,
: चाट का ठेला, मूंगफली, भुट्टा
: पटरी पर दुकान

: मजदूरी, पुताई
: होटल में – बर्तन मांजते।
तिलक ब्रिज आ गया –
बाबू जी, आप क्या करते हैं ?
–हम! हम पढ़ने-लिखने का काम करते हैं,
आज यहां सेमिनार है
झुग्गियां गिराई जा रही हैं
इसके खिलाफ
–पैसे बढ़ाए :
तीस रुपये (बीस और दस का नोट)
उसने दस का नोट वापिस कर दिया
"बीस ही ठीक है
आप तो हमारे ही हो।"
अंदर पसीज गया मैं
"अरे रख लो
तुम्हारा किराया पूरा हो जायेगा
बोहनी समझ लो।"
उसने नोट माथे पर लगाए
दुआएं देते हुए
आगे बढ़ गया
किसी ने हाथ देकर, उसे रोका
फिर वही हुज्जत...
"पंद्रह नहीं, दस लोगे।"

कुली

अकड़ के उतरे साहब
रेल के डिब्बे से
दोनों हाथ जेब में डाले
जैसे वो कट गए हों
कुली पीछे-पीछे बोझा उठाये
और साहब की बीबी
अपने नाज-नखरे संवारती,
टकराए अचानक साहब
एक खम्भे से
और धम से नीचे गिर पड़े
चिल्लाये :
अरे! देखकर नहीं चला जाता
खम्भा वहीं खड़ा रहा
पीछे से कोई बोला-
"ई भाई, इन्हें भी उठा लो सर पर अपने"
आखिर सर ही तो हैं- साहब
हर एक के सर पर सवार,
अब दोनों हाथ जमीन पर थे
पर अकड़ उनकी
ज्यों की त्यों बरकरार थी-
सीधी सतर लठ्ठ जैसी।

राइट टू वर्क

ठेकेदार के हाथ में डंडा
अफसर के हाथ में कलम
और उनके हाथ में हैं पैनीं दरांतियां
जो निकली हैं झुंड में
कालोनी की घास
काटने के मिशन (काम) पर।
उन मेहनती और गरीब
घसियारन बहनों से
चिल्लाकर कहने को मन होता है-
काट डालो गले उन सबके
जो देते नहीं दिहाड़ी तुम्हें
पूरी या वक्त पर
और ताड़ते हैं तुम्हें
गलत नजरों से।
विडम्बना यही है-
राजा सिर्फ एक होता है
शासन करते हुए
खाट तोड़ने के लिए
प्रजा होती है अनेक
शोषित होने और खटने के लिए।

यूनिफार्म

एक-सी वर्दी पहने हुए
सड़क पर मार्च करती
भीड़ के लोगों से
मुझे डर लगता है,
चाहे वह केसरिया वाले साधु हों
चाहे आर्मी के जवान
चाहे श्वेत साड़ी वाली बहनें
चाहे ईद पर जा रहे नमाजी
या फिर खादी वाले गांधीवादी।
न जाने कब जुनून सवार हो जाए
औरों की शामत आ जाए।
यूनिफार्म व्यक्तित्व का हनन है
और इंसान की नुमाईश
बस यह स्कूली बच्चों के
लोक नृत्य में ही अच्छी लगती है।
अभी रंग-बिरंगे गंदे
और मटमैले कपड़े वाले
लोग दिखे हैं
जो रिक्शे चला रहे हैं
जो चाय बना रहे हैं
जो गुब्बारे बेच रहे हैं-
तभी तो हौंसला बना है मुझमें
भीड़ की विपरीत दिशा में चलने का।

अंधा कानून

सुनकर ऐतिहासिक फैसला
जमीन के बंटवारे का
मुझे डर लगने लगा है
अपने घर में रखी
किताबे और फोटो
देखते हुए:
कुरान है, अंबेडकर है
गांधी है, रामायण है
कितने टुकड़े कर देगी अदालत
मेरे छोटे से उस कमरे के
यदि मुझ पर मुकद्दमा
ठोक दिया मजहबियों ने,
गिरफ्तार कर लेगी मुझे
पुलिस
गैरजमानती वारंट जारी करते हुए
मार्क्स-माओ के वैचारिक ग्रंथों की
लाल जिल्द को सबूत बनाकर और
नक्सली का लेबुल लगाकर,
कोर्ट राष्ट्रहित में
पांच हजार पृष्ठों का
ऐतिहासिक फैसला लिखकर
मुझे फांसी पर चढ़ा देगा!

बगावत

मेरे और उनके बीच
लोहे की मोटी सलाखें हैं
मुझे कैदी वो लगते हैं
और उन्हें मैं,
पर चूंकि उनकी जमात ज्यादा है
तो आवाज तो उन्हीं की सुनाई देगी।
समाज की समझ
और परम्परा की इज्जत को
मुझसे खतरा है
वो मुझे सूली पर लटका देंगे
उनसे अलग सोचने के जुर्म में
अगर फिर भी कुछ दम
बाकी रहा मुझमें
तो तानों के पत्थर मार-मार कर
मुझे खदेड़ देंगे
पागलघर में,
जहां से मेरी चीखें
उनकी मीठी नींद में
खलल नहीं डालेंगी।

रक्त-पिपासा

मैं कौआ हूँ
आदिवासी, गरीब और अनपढ़
काला और कुरुप
मेरी आवाज कर्कश है
फिर भी मुझे पानी पीने का हक है
मुझ पर ही क्यूँ गढ़ी
तुमने घड़े और कंकड़ की कहानी ?

बिसलेरी मैं खरीद नहीं सकता
पेशाब मैं पी नहीं सकता
मुझे नहीं बोलना मीठा
मैं चोंच से लड़ूंगा
कांव-कांव के नारे लगाऊँगा
सवाल पूछूँगा चिल्ला-चिल्ला कर
घड़े में पानी कम क्यूँ था?
तालाब कहाँ चले गए?
पब्लिक-प्लेस में प्याऊ क्यूँ नहीं है?

तुमने मेरे हिस्से का पानी हथिया लिया है
जल, जंगल और जमीन पर
मेरा भी हक है
मैं भी प्राणी हूं
मुझे भी प्यास लगती है

मुझे भी भूख लगती है।
तुम इकट्ठा करो पानी बैंक में
बहाओ उसे पार्क की अय्याशी में
और मैं लाचार ताकता रहूँ
घड़े की तरफ जिसमें
न तो पानी है
न ही पैसा है
फोड़ दूंगा घड़े को
तुम्हारे सिर के ऊपर
पत्थर डाल-डाल कर।

अगर मेरा एक साथी भी
मर गया प्यास से
तो तुम्हारा ऐसा घिराव करूँगा
नानी याद आ जाएगी
तुम्हें नोंच-नोंच कर खा जाऊँगा
तुम्हारा खून पी जाऊँगा।

नया साल

खुशफहमी है
कलगीधारी घोड़े को
स्मार्ट होने की
बग्गी में जुते हुए,
श्वेतवर्णी कबूतर को
शांतिदूत होने की
गगन में उड़ते हुए और
पढ़े-लिखे आदमी को
मालिक होने की
सरकारी नौकरी करते हुए।
ज्यादा जरूरी है
ईंटों का बोझा
रात की पहरेदारी और
रोटी पकाना
जिसकी जिम्मेदारी सौंपी है
समझदार समाज ने
गधे, उल्लू और अनपढ़ औरतों को
मूर्ख की पदवी देते हुए।
आओ साथियों!
1 जनवरी को
चंद जहीन लोगों के लिए छोड़कर
हम बहुजन :
1 अप्रैल का उत्सव मनाएं,

वही हमारी होली है
वही हमारी ईद है
आज हमारा दिन है
कल से तो फिर सहनी है
महंगाई की मार
आर्थिक बजट का असर
हम पर ही पड़ेगा
क्योंकि हम मूरख हैं
और तुम हरामखोर।

इलाज

दर्द हुआ मेरे कान में
तो इधर-उधर भागा
जिसने जो नुस्खा बताया
वही अपनाया,
उस दौरान लगता था
पूरे शरीर में मानो
कान ही हो सब कुछ।
कितने सारे टैस्ट कराते हैं
हम किसी रोग में
उसकी ठीक वजह
जानने के लिए
पर क्यूँ नहीं सोचते
वैसे ही संजीदगी से
गरीबी-भुखमरी जैसी
खतरनाक बीमारियों के बारे में
और वंचितों-उपेक्षितों को
सरकारी भीख की
मामूली मल्हमपट्टी लगाकर
टरका देते हैं
सड़क की धूल फांकने के लिए
किस्मत की खाक छानने के लिए।
डॉक्टर भी नहीं हैं
नर्सें भी नहीं हैं
बेबस रोगी ही रोगी दिखते हैं बस
सामाजिक महामारी फैली है चारों ओर
यह कैसा अस्पताल है।
यह कैसा सूरतेहाल है!

मैं

मैं भारत का बेटा हूँ
नाम है मेरा रजत सिंह
देश की खातिर लड़ूँगा मैं
जैसे लड़े सूरमा भगत सिंह।
गुरुनानक के प्यारे हैं हम
हमें अमन ही भाता है
पर हमको कमजोर न समझो
लड़ना भी हमको आता है
टूट पड़ेंगे दुश्मन पर
बन कर हम गोबिन्द सिंह।

मेरा परिवार

ममता से भरी माँ
प्यार से भरे पापा
छोटी बहिना
और नन्हां-सा भैया,
यह है मेरा परिवार
हां! एक दादी भी है
जो मुझे समझाती हैं हमेशा
अपने वक्त की बातें
और रोज सुनाती हैं

किस्से-कहानी
सोने से पहले।

मेरे पापा

देखता हूँ सुबह उठते ही
पापा को
जो लगे होते हैं तैयारी में
मुझे स्कूल ले जाने को।
प्यार करते मुझे मेरे पापा
कभी डाँट भी देते
पर जब नहीं होता मैं घर।
याद करते मुझे हर क्षण
मम्मी से करते बातें
मेरे सपनों की
मेरे पापा को फिक्र है मेरी
अपने से भी अधिक।

मेरा घर

थक कर आता हूँ
जब मैं बाहर से
देता है आराम
मुझे मेरा यह सुंदर घर।
पढ़ने जब मैं जाता हूँ

रहता हर पल
मन में मेरा घर
छुट्टी होते ही दौड़ पड़ता
मैं अपने घर।

मेरी अभिलाषा

सुखी रहें सभी धरती पर
यह है मेरी अभिलाषा
रोटी-कपड़ा मिले सभी को
यह है मेरी अभिलाषा
हर बच्चे को मिले पढ़ाई
यह है मेरी अभिलाषा
कभी न हो कहीं लड़ाई
यह है मेरी अभिलाषा।

पुरानी दिल्ली स्टेशन के सामने

न जाने किस उम्मीद पर
जिंदा हैं लोग
बीमार-लाचार-अपाहिज
भूखे-नंगेः
रहने को जगह नहीं
पीने को पानी नहीं
खाने को रोटी नहीं
चेहरे पर रौनक नहीं
आंखों में सपना नहीं
कहने को कोई अपना नहीं,
नौकर और मजदूर की जिंदगी जीते
सहते हर वक्त
सिर्फ जुल्म और जिल्लत
सहमे-ठहरे हुए
न रोते-न हँसते
ठोकर खाते चप्पलें घिसते
थक कर सो जाते,
शायद सुबह की खुशफहमी में
जिंदा हैं इसलिए ये
गरीबनवाज के आस्थावान बंदे
क्योंकि आत्महत्या को पाप मानते हैं
और इस नारकीय जीवन को
न बदलने वाली अपनी किस्मत।

मास्टर ऑफ आर्ट

पहनूँगी मैं
अपनी पसंद की ड्रेस
यूनिफार्म
मुझ पर मत थोपो
अगर चाहते हो तुम
मेरा भला, तो
चलने दो मेरी चाल
कम्पटीशन की दौड़ में
मुझको मत झोंको।

कुदरत में हर शै की
अपनी खासियत है
अपनी काबलियत है,
बगीचे की सुंदरता
रंग-बिरंगे फूलों से है
सबको
गुलाब या कमल बनाने की
व्यर्थ कोशिश मत करो।

मुझे मास्टर बनना है
अपने हुनर की
सब कुछ पढ़ा-लिखा-सिखा-रटा कर
जैक और ऑलराउंडर मत बनाओ

मुझे:
मेरा गीत गाने दो
मेरा नृत्य करने दो
मेरा खेल खेलने दो
मेरा चित्र बनाने दो
कोयल ही रहने दो
मुझको तोता मत बनाओ
जैसी हूँ मैं:
मंजूर करो
मुझको वैसी मत बनाओ।

मैं युधिष्ठिर नहीं हूँ

सबको मरना है किसी रोज
तो क्या जीना ही बंद कर दें
एक्सीडेंट देखकर सड़कों पर
लोग गाड़ी चलाना ही छोड़ दें
तलाक के मुकद्दमों से डर कर
शादी का खयाल ही मन से हटा दें।
शायद यही बेहतर है लगना
जिजीविषा के लिए-
मेरी मौत नहीं होगी
मेरी टांग नहीं टूटेगी
मेरी गांठ नहीं छूटेगी
पानी पीने दो
तुम : यक्ष!
या न पीने दो,
मैं तो तुम्हें यही जवाब दूँगा
सपनों को टूटते हुए देखकर भी
नित नए सपने देखना
दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य है
मौत से भी बड़ा।

वक्त गुजरने के साथ

धीरे-धीरे
सब गलत ही होता है
बस कुछ बदल जाता है
बस कुछ भूल जाता है
पर घाव रिसता रहता है
अंदर-ही-अंदर
सड़ांध पैदा हो जाती है
ग्रंथियां हो जाती हैं
तनिक और जटिल,
वो दिलासे के लिए
कहते हैं अब भी
धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा
पर मैं जानता हूँ पक्की तरह
धीरे-धीरे
सिर्फ घुन ही लगता है
अनाज को और समाज को:
कुछ न करने से
कुछ न कहने से।

विन-विन

न चिढ़ना है
न चिढ़ाना है,
न रोना है
न रूलाना है,
न हारना है
न हराना है,
न खुद डरना है,
न किसी को डराना है।
जीतना है और जिताना है
हँसना है और हँसाना है
चलना है और चलाना है
जीना है और जिलाना है।

नया-पुराना

मौसम बदलता है
मंजर बदलता है
मन बदलता है
वक्त बदलता है
जमाना बदलता है
इंसान बदलता है
रिश्ता बदलता है
पल-पल बदलती
जिन्दगी में
सब कुछ बदलता है।